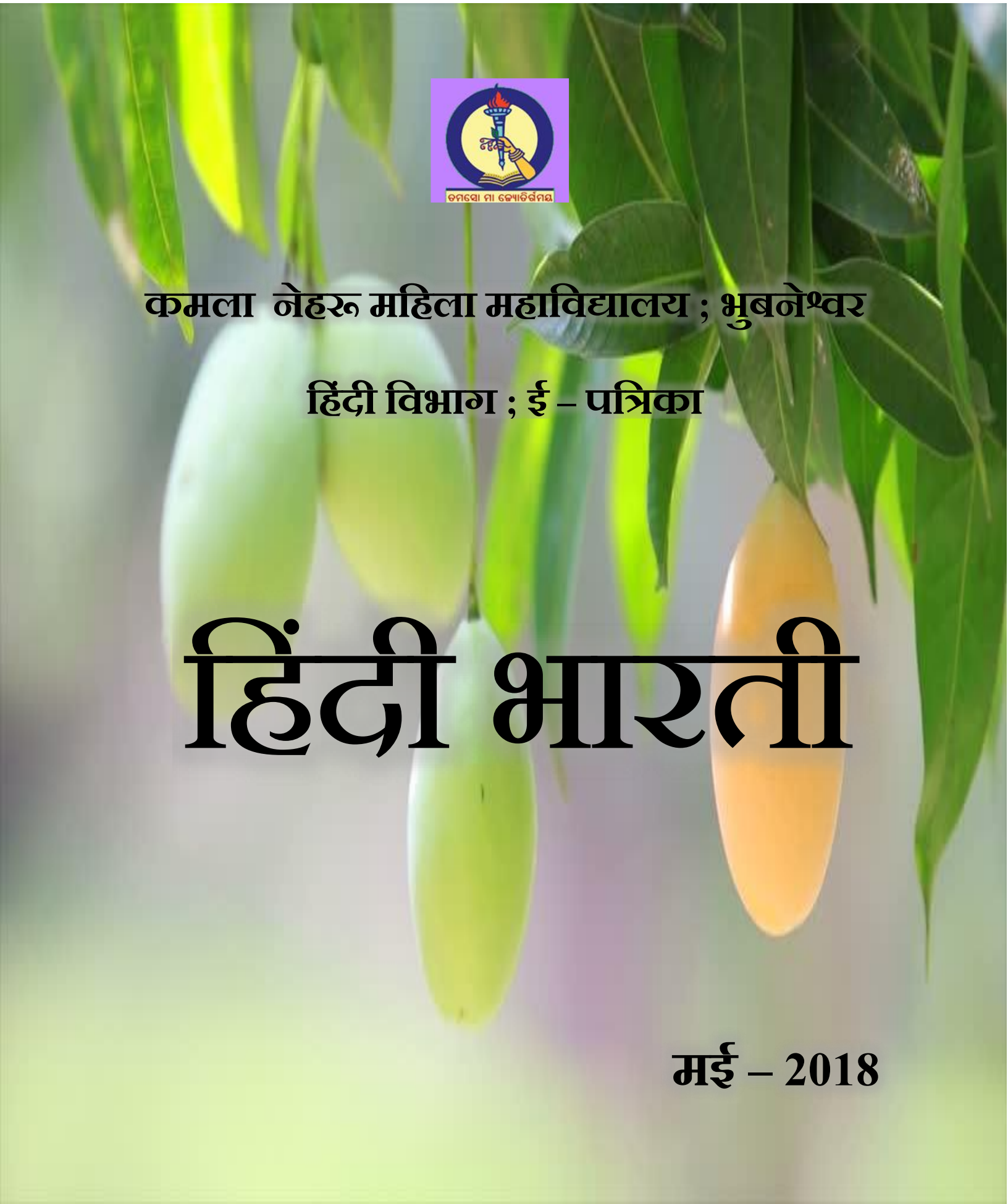

कमला नेहरू महिला महाविद्यालय ; भुबनेश्वर

हिंदी विभाग ; ई – पत्रिका

हिंदी भारती

मई – 2018

संपादक मंडली

संपादक : डॉ. वेदुला रामालक्ष्मी

डॉ. मनोरमा मिश्रा

उप – संपादक : कु. प्रियंका प्रियदर्शिनी परिडा

कु. शुभश्री शताब्दी दास

संपादकीय

"हिंदी भारती" का मई अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। "हिंदी भारती" के इस अंक में विभाग की छात्राओं ने जीवन को अपनी दृष्टि से देखने, समझने एवं अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। इस अंक में ग्रीष्म ऋतु की तपिश भी है और विद्वद्जनों के आशिर्वाद एवं मार्गदर्शन की शीतल छाँव भी। हिंदी विभाग का यह प्रयास रहा है कि ई - पत्रिका हर अंक के साथ आगे बढ़े, अतः इस अंक में भी कुछ नवीनता है। हिंदी भारती विगत आठ महिनों से निर्बाध रूप से आप तक पहुंच रही है। समय समय पर आप विद्वद्जनों ने पत्रिका को सराहते हुए विभाग की छात्राओं को आशिर्वाद दिया है एवं मार्गदर्शन भी किया है। पत्रिका के इस अंक से आपके संदेश एवं सुझावों को "आपकी बात" शीर्षक के अंतर्गत शामिल कर उनसे लाभांवित होने का प्रयास करेंगे। "आपकी बात" हमारे लिये अखण्ड प्रेरणा का स्रोत है एवं हम आशा करते हैं कि भविष्य में इसी तरह आप हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे और आपका आदर और स्नेह इसी तरह मिलता रहेगा। अब हमारी पत्रिका हमारे महाविद्यालय के वेब साइट www.knwcbbsr.com पर भी उप्लब्ध है।

संपादक : डॉ. वेदुला रामालक्ष्मी

डॉ. मनोरमा मिश्रा

अनुक्रमणिका

क्र सं.	शीर्षक	विधा	नाम	पृ. सं.
1.	आम	लेख	संगृहित सुभश्री शताब्दि दास	5
2.	अन्तर्राष्ट्रीय आम महोत्सव	लेख	संगृहित प्रियंका प्रियदर्शिनी	8
3.	आम फिर बौरा गए	निबंध	हजारी प्रसाद द्विवेदी	10
4.	भारतीय रंगमंच और नाटक	लेख	लिज़ा मिश्र	17
5.	चुनाव	कहानी	पिंकी सिंह	21
6.	रांगेय राघव	लेखक परिचय	संगृहित	23
7.	माँ	कविता	सोनालि राउत	26
8.	नुआखाई	लेख	सोनिआ नायक	27
9.	समंदर	कविता	पिंकी सिंह	29
10.	प्रभा खेतान	लेखक परिचय	संगृहित	30
11.	ऐ ज़िंदगी	कविता	कादम्बनी पण्डा	31
12.	आत्मविश्लेषण	लेख	सोनाली राउत	32
13.	गाड़ीवान किसान की हनुमान भक्ति	कहानी	शरीफा शरवारी	33
14.	मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना	लेख	स्तुति प्रज्ञा दास	34
15.	आपकी बात			36
16.	बूढ़ी काकी	यू ट्यूब लिंक	प्रेमचंद	41
17.	यादों के गलियारों से			42

आम

आम एक प्रकार का रसीला फल होता है। इसे भारत में फलों का राजा भी कहते हैं। इसकी मूल प्रजाति को भारतीय आम कहते हैं, जिसका वैज्ञानिक नाम “मेंगीफेरा इंडिका” है। आमों की प्रजाति को मेंगीफेरा कहा जाता है। इस फल की प्रजाति पहले केवल भारतीय उपमहाद्वीप में मिलती थी, इसके बाद धीरे धीरे अन्य देशों में फैलने लगी। इसका सबसे अधिक उत्पादन भारत में होता है। यह भारत, पाकिस्तान और फिलीपींस में राष्ट्रीय फल माना जाता है और बांग्लादेश में इसके पेड़ को राष्ट्रीय पेड़ का दर्जा प्राप्त है

इतिहास

भारतीय उपमहाद्वीप में कई हजार वर्ष पूर्व आम के बारे में लोगों को पता चल गया था और उसकी खेती की जाती थी। चौथी से पाँचवीं शताब्दी पूर्व ही यह एशिया के दक्षिण पूर्व तक पहुँच गया। दसवीं शताब्दी तक पूर्वी अफ्रीका में भी इसकी खेती शुरू हो गई। 14वीं शताब्दी में यह ब्राजील, बरमूडा, वेस्टइंडीज और मेक्सिको तक पहुँच गया।

नाम

संस्कृत भाषा में इसे आम्रः कहा जाता है, इसी से हिन्दी, मराठी, बंगाली, मैथिली आदि भाषाओं में इसका नाम "आम" पड़ गया। मलयालम में इसका नाम मान्न है। वर्ष 1498 में केरल से पुर्तगाली मसालों को अपने देश ले जाते थे। वहीं से आम और इसका नाम भी ले गए। वे लोग इसे मांगा बोलते थे। यूरोपीय भाषाओं में इसका नाम 1510 में पहली बार इटली भाषा में लिया गया। इसके बाद

इटली भाषा से अनुवाद के दौरान ही यह फ्रांसीसी भाषा में आया और उससे होते हुए अंग्रेजी में आया, लेकिन अंत में "ओ" का उच्चारण अभी तक स्पष्ट नहीं है कि यह कैसे आया। अतः यह कहा जा सकता है कि इन सभी भाषाओं ने मलयालम भाषा से इस शब्द को लिया।

उत्पादन

पूरे विश्व में लगभग 4 करोड़ 30 लाख टन आम का उत्पादन होता है, इसमें से 42% आम भारत में होते हैं। भारत के अलावा चीन और थाईलैंड इसके सबसे बड़े उत्पादक हैं।

स्थान	देश	उत्पादन (लाख टन में)
1	भारत	180
2	चीन	44.5
3	थाईलैण्ड	31.4
4	इंडोनेशिया	20.6
5	मेक्सिको	19.0
6	फ़िलीपीन्स	11.0
	विश्व	**415.6**

आम की भारतीय किस्में

वार्षिक किस्में

- बंबइया
- तोतापरी
- मालदा
- पैरी
- सफ्दर पसंद
- सुवर्णरेखा
- सुन्दरी
- लंगडा
- राजापुरी

मध्य ऋतु किस्में

- अलंपुर बानेशन
- अल्फोंसो/बादामी/गुंदू/आप्पस/खडेर'
- बंगलोरा/तोटपुरी/कॉल्लेक्टीओं/किली-मुक्कु
- बाँगनपलल्य/बनेशन/छपती
- दशहरी/दशहरी अमन/निराली अमन
- गुलाब ख़ास
- ज़ार्दालू

वर्ष में मध्य में

- रूमानि
- समार्बेहिस्त/चोवसा/चौसा
- वनरज

मौसम की समाप्ति पर

- फजली
- सफेदा लखनऊ
- कभी-कभार फलने वाले
- मुलगोआ
- नीलम

सुभश्री शताब्दि दास, +3 प्रथम वर्ष

अन्तर्राष्ट्रीय आम महोत्सव

अन्तर्राष्ट्रीय आम महोत्सव, दिल्ली, भारत में आयोजित होने वाला एक वार्षिक द्विदिवसीय उत्सव होता है। इसमें आम की किस्मेंप्रदर्शित की जाती हैं, साथ ही आम से संबंधित लोग आते हैं, स्पर्धाएं आयोजित की जाती हैं। इस महोत्सव का आयोजन १९८७ से आरंभ किया गया है।

यह उत्सव प्रतिवर्ष दिल्ली में आयोजित किया जाता है। यह उत्सव भारत में गर्मियों के शुरुवात में मनाया जाता है। यह उत्सव दो दिनों का होता है। जिसमे 550 से भी ज्यादा प्रकार के आम प्रदर्शित किये जाते हैं। यह उत्सव 1987 से मनाया जाता है ।

यह उत्सव दिल्ली पर्यटन और परिवहन उन्नयन विभाग और कृषि और प्रस्तुत खाद्य सामग्री निर्यात उन्नयन के सहयोग में मनाया जाता है। इसमें हॉर्टीकल्चर बोर्ड और नई दिल्ली नगर निगम का भी सहयोग रहता है। हाल ही के वर्षों में यह उत्सव तालकटोरा स्टेडियम में मनाया जा रहा है ।

देश के हर कोने से आम उत्पादक इसमें भाग लेते हैं, और उन्हें एक बेहतरिन अवसर दिया जाता है ताकि वे फलों के राजा को प्रदर्शित कर सके। पर्यटक जो सोचते हैं कि आम साधारणत: 5 या 6 प्रकार के होते हैं वे यह जानने को पाते हैं कि आम एक बहुत बड़े मात्रा में और विभिन्न किस्म के उत्पदित किये जाते हैं।

इस उत्सव में दर्सक कई तरह के रंगीन मनोरंजन जैसे कि नाच और गाने का भी लुफ्त उठाते हैं। यह एक ऐसा अंतर्राष्ट्रीय मन्च है जिसके दो मुख्य उद्देश्य है - पर्यटन को प्रोत्साहित करना और साथ ही साथ आम का निर्यात करना ।

550 से भी ज्यादा तरह के आम इस प्रदर्शनी में पर्यटकों के लिए प्रदर्शित किये जाते हैं ताकि वे उन्हें देख सके और उनका लुफ्त उठा सकें। उत्सव के कार्योक्रमों के अंतर्गत कुछ ऐसे कार्यक्रम भी रहते हैं जैसे कि महिलाओं के लिए आम खाने की प्रतियोगिता, आम के ऊपर नारे लिखने की प्रतियोगिता, आम प्रदर्शन, आम के ऊपर प्रश्नोत्तरी आदि।

इस उत्सव में आमों के बीच में एक प्रतियोगिता भी की जाती है जिसमे सबसे बड़े आम को पुरस्कृत किया जाता है ।

प्रियंका प्रियदर्शिनी परिडा, +3 तृतीय वर्ष

आम फिर बौरा गए

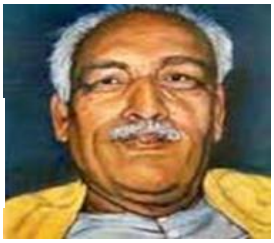

हजारी प्रसाद द्विवेदी

वसंतपंचमी में अभी देर है, पर आम अभी से बौरा गए। हर साल ही मेरी आँखें इन्हें खोजती हैं। बचपन में सुना था कि वसंतपंचमी के पहले अगर आम्रमंजरी दिख जाय तो उसे हथेली पर रगड़ लेना चाहिए, क्योंकि ऐसी हथेली साल भर तक बिच्छू के जहर को आसानी से उतार देती है। बचपन में कई बार आम की मंजरी हथेली पर रगड़ी है। अब नहीं रगड़ता, पर बसंतपंचमी से पहले जब कभी आम्रमंजरी दिख जाती है तो बिच्छू की याद अवश्य आ जाती है। सोचता हूँ, आम और बिच्छू में क्या संबंध है? बिच्छू ऐसा प्राणी है जो आदिम सृष्टि के समय जैसा था, आज भी प्रायः वैसा ही है। जलप्रलय के पहले वाली चट्टानों की दरारों में इसका जैसा शरीर पाया गया है, आज भी वैसा ही है। कम जंतु इतने अपरिवर्तनशील रहे होंगे। उधर आम में जितना परिवर्तन हुआ है, उतना बहुत कम वस्तुओं में हुआ होगा। पंडित लोग कहते हैं कि 'आम्र' शब्द 'अम्र' या 'अम्ल' शब्द का रूपांतर है। 'अम्र' अर्थात खट्टा। आम शुरू-शुरू में अपनी खटाई के लिए ही प्रसिद्ध था। वैदिक आर्य लोगों में इस फल की कोई विशेष कदर नहीं थी। वहाँ तो 'स्वाद उदुंबरम्' या जायकेदार गूलर ही बड़ा फल था। लेकिन 'अमृत' शब्द कुछ इसी 'अम्र' का 'अम्रित' (खट्टा बना हुआ) से बना बिगड़ा होगा। बाद में 'आम्र' संसार का सबसे मीठा फल बन गया और 'अम्रित' अमृत बन गया। अपना-अपना भाग्य है। शब्दों के भी भाग्य होते हैं। परंतु यह सब अनुमान ही अनुमान है। सच भी हो सकता है, नहीं भी हो सकता है। पंडितों से कौन लड़ता फिरे। लेकिन बिच्छू के साथ आम का संबंध चक्कर में डाल देनेवाला है अवश्य। मैं जब आम की मनोहर मंजरियों को देखता हूँ तब बिच्छू की याद आ जाती है, बिच्छू जो संसार का सबसे पुराना, सबसे खूसट, सबसे क्रोधी और सबसे

दकियानूस प्राणी है। प्रायः मोहक वस्तुओं को देखकर मनहूस लोगों की याद आ जाती है। सबको आती है क्या?

जरा तुक मिलाइए। आम्रमंजरी मदनदेवता का अमोघ बाण है और बिच्छू मदनविध्वंसी महादेव का अचूक बाण है। योगी ने भोगी को भस्म कर दिया, पर भोगी का अस्त्र योगी के अस्त्र को व्यर्थ बना रहा है। कुछ ठिकाना है इस बेतुकेपन का। परंतु सारी दुनिया-यानी बच्चों की दुनिया इस बात को सच मानती आ रही है।

परसाल भी मैंने वसंतपंचमी के पहले आम्र मुकुल देखे थे। पर बड़ी जल्दी वे मुरझा गए। उसी आम को दुबारा फूलना पड़ा। मुझे बड़ा अद्‌भुत लगा। आगे-आगे क्यों फूलते हो बाबा, जरा रुकके ही फूलते। कौन ऐसी यात्रा बिगड़ी जाती थी। मेरे एक मित्र ने कहा था कि मुझे ऐसा लगता है कि नववधू के समान यह बिचारी आम्रमंजरी जरा सा झाँकने बाहर निकली और सामने हमारे जैसे मनहूसों को देखकर लजा गई। वस्तुतः यह मेरे मित्र की कल्पना थी। अगर सच होती तो मैं कहीं मुँह दिखाने लायक न रहता। पर मुझे इतिहास की बात याद आ गई। उससे मैं आश्वस्त हुआ, मनहूस कहाने की बदनामी से बच गया। वह इतिहास मनोरंजक है। सुनाता हूँ।

बहुत पहले कालिदास ने इसी प्रकार एक बार आम्रमंचजरी को सकुचाते देखा था। 'शकुंतला' नाटक में वे उसका कारण बता गए हैं। दुष्यंत पराक्रमी राजा थे। उनके हृदय में एक बार प्रिया वियोग की विषम ज्वाला जल रही थी, तभी वसंत का पदार्पण हुआ। राजा ने वसंतोत्सव न करने की आज्ञा दी। आम बिचारा बुरी तरह छका। इसका स्वभाव थोड़ा चंचल है। बसंत आया नहीं कि व्याकुल होकर फूल पड़ता है। उस बार भी हजरत पुलकित हो गए। तब तक राजा की आज्ञा हुई। बेवकूफ बनना पड़ा। इन मंजरियों के रूप में मदनदेवता ने अपना बाण चढ़ाया था। बिचारे अधखिंचे धनुष के बाण समेटने को बाध्य हुए - 'शंकं संहरति स्मरोअपि चकितस्तूर्णार्धकृष्टं शरम्'। आजकल दुष्यंत जैसे प्रतापी राजा नहीं है। पर पिछली बार भी जब मदनदेवता को अपना अर्धकृष्ट शर समेटना ही पड़ा था तो कैसे कहा जाय कि वैसे प्रतापी लोग अब नहीं हैं? जरूर कोई-न-कोई पराक्रमी मनुष्य कहीं-न-कहीं विरहज्वाला में संतप्त हो रहा होगा। कार्य जब है, तो कारण भी होगा ही। इतिहास बदल थोड़े जायगा? और इस घटना के बाद जब कोई कालिदास को मनहूस नहीं कहता, तो मुझे ही क्यों कहेगा?

आशा करता हूँ, इस बार आम्रमंजरी को मुरझाना नहीं पड़ेगा। आहा, कैसा मनोहर कोरक है। बालिहारी है इस 'आता भ्रहरित-पाण्डुर' शोभा की। अभी सुगंधित नहीं फैली है, किंतु देर भी नहीं है। कालिदास ने आम्र कोरकों को बसंत काल का 'जीवितसर्वस्व' कहा था। उन दिनों भारतीय लोगों का हृदय अधिक संवेदनशील था। वे सुंदर का सम्मान करना जानते थे। गृहदेवियाँ इस लाल हरे पीले आम्र कोरक में देखकर आनंद विह्वल हो जाती थी। वे इस 'ऋतुमंगल' पुष्प को श्रद्‌धा और प्रीति की दृष्टि से देखती थीं। आज हमारा संवेदन भोथा हो गया है। पुरानी बातें पढ़ने से ऐसा मालूम होता है जैसे कोई अधभूला पुराना सपना है। रस मिलता है, पर प्रतीति नहीं होती। एक अजब आवेश के साथ पढ़ता हूँ।

आत्ताम्महरियपाण्डुर जीवितसब्बं बसंतमासस्य।

दिट्ठोसि चूदकोरअ उदुमंगल तुम पसाएमि।।

आम्रकोरकों को प्रसन्न करने की बात भावोच्छ्वास की बहक के समान सुनाई देती है। मनुष्यचित्त इतना नहीं बदल गया है कि पहचान में ही न आए। पहले लोग अगर आम्रकोरक देखकर नाच उठते थे तो इन दिनों कम-से-कम उछल जरूर पड़ना चाहिए। पुष्प-भार से लदे हुए आम्र-वृक्ष को देखकर सहज भाव से निकल जानेवाले सैकड़ों मनुष्यों को मैंने अपनी आँखों देखा है। कोई नाच नहीं उठता। परंतु एक बार मैं भी थोड़ा विह्वल हुआ था और एक कविता लिख डाली थी। छपाई तो अब भी नहीं है, पर सोचता हूँ छपा देनी चाहिए। बहुत होगा, लोग कहेंगे, कविता में कोई बार सार नहीं है। कौन बड़ा कवि हूँ जो अकवि कहाने की बदनामी से डरूँ? यह कविता आम्र कोरकों की अद्‌भुत विह्वलकारिणी शक्ति का परिचायक होकर मेरे पास पड़ी हुई है।

कामशास्त्र में 'सुवसंतक' नामक उत्सव की चर्चा आती है। 'सरस्वती कंठाभरण' में लिखा है कि सुवसंतक वसंतावतार के दिन को कहते हैं। बसंतावतार अर्थात जिस दिन वसंत पृथ्वी पर अवतरित होता है। मेरा अनुमान है, वसंत पंचमी ही वह वसंतावतार की तिथि है। 'मात्स्यसूक्त' और 'हरिभक्तिविलास' आदि ग्रंथों में इसी दिन की बसंत का प्रादुर्भाव दिवस माना गया है। इसी दिन मदनदेवता की पहली पूजा विहित है। यह भी अच्छा तमाशा है। जन्म हो वसंत का और उत्सव मदनदेवता का। कुछ तुक नहीं मिलता। मेरा मन पुराने जमाने के उत्सवों को प्रत्यक्ष देखना चाहता है, पर हाय, देखना क्या संभव है? 'सरस्वती कंठाभरण' में महाराज भोजदेव ने सुवसंतक की एक हल्की-सी झाँकी दी है। इस दिन उस युग की ललनाएँ कंठ में कुवलय की माला और कान में दुर्लभ आम्रमंजरियाँ धारण करके गाँव की जगमग कर देती थीं।

छणपिट्ठधूसरत्थणि, महुमअतम्मच्छि कुवलआहरणे।

कण्णकअचूअमंजरि, पुत्ति तुए मंडिओ गामो।।

पर यह अपेक्षाकृत परवर्ती समाचार है। इसके पहले क्या होता था? क्या वसंत के जन्मदिन को मदन का जन्मोत्सव मनाया जाता था? धर्मशास्त्र की पोथियों में लिखा है कि वसंतपंचमी के दिन मदनमोहन की पूजा करने से स्वयं श्रीकृष्ण चंद्रजी प्रसन्न होते हैं। यह और मजेदार बात निकली। तांत्रिक आचार से विष्णु भजन करनेवाले बताते हैं कि 'काम-गायत्री' ही श्रीकृष्ण गायत्री है। तो कामदेव और श्रीकृष्ण अभिन्न देवता हैं? पुराणों में लिखा है कि कामदेवता श्रीकृष्ण के घर पुत्र रूप में उत्पन्न हुए थे। वह कथा भी कुछ अपने ढंग की अनोखी ही है। कामदेव प्रद्‌युम्न के रूप में पैदा हुए, और शंबर नामक मायाबी असुर उन्हें हर ले गया और समुद्र में फेंक दिया। मछली उन्हें खा गई। संयोगवश वही मछली शंबर की भोजनशाला में गई और बालक फिर उसके पेट से बाहर निकला। कामदेवता की पत्नी रतिदेवी वहाँ पहले से ही मौजूद थीं। और ऐसे मौकों पर जिस व्यक्ति का पहुँचना नितांत आवश्यक होता है, वे

नारद मुनि भी वहाँ पहुँच गए। रति को सारी बातें उन्हीं से मालूम हुई। प्रद्युम्न पाले गए, शंबर मारा गया, श्रीकृष्ण के घर में पुत्र ही नहीं, पुत्रवधू भी यथा-समय पहुँच गई, इत्यादि-इत्यादि। पुराणों में असुर प्रायः ही शैव बताए गए हैं। कामदेव उनके दुश्मन हों यह तो समझ में आ जाता है, पर भागवतों से उसका संबंध कैसे स्थापित हुआ? मेरा मन अधभूले इतिहास के आकाश में चील की तरह मँडरा रहा है, कहीं कुछ चमकती चीज नजर आई नहीं कि झपाटा मारा। पर कुछ दिख नहीं रहा है। सुदूर इतिहास के कुज्झटिकाच्छंन नभोमंडल में कुछ देख लेने की आशा पोसना ही मूर्खता है। पर आदत बुरी चीज है। आर्यों के साथ असुरों, दानवों और दैत्यों के संघर्ष से हमारा साहित्य भरा पड़ा है। रह-रहकर मेरा ध्यान मनुष्य की इस अद्भुत विजय-यात्रा की ओर खिंच जाता है, कितना भयंकर संघर्ष वह रहा होगा जब घर में पालने पर सोए हुए लड़के तक चुरा लिए जाते होंगे और समुद्र में फेंक दिए जाते होंगे, पर हम किस प्रकार उसकी भूल-भालकर दोनों विरोधी पक्षों के उपास्य देवताओं को समान श्रद्धा के साथ ग्रहण किए हुए है? आज इस देश में हिंदू और मुसलमान इसी प्रकार के लज्जाजनक संघर्ष में व्यापूत हैं। बच्चों और स्त्रियों को मार डालना चलती गाड़ी से फेंक देना, मनोहर घरों में आग लगा देना मामूली बातें हो गई हैं। मेरा मन कहता है कि ये सब बातें भुला दी जाएँगी। दोनों दलों की अच्छी बातें ले ली जाएँगी, बुरी बातें छोड़ दी जाएँगी। पुराने इतिहास की ओर दृष्टि ले जाता हूँ तो वर्तमान इतिहास निराशाजनक नहीं मालूम होता। कभी-कभी निकम्मी आदतों से भी आराम मिलता है।

तो, यह जो 'भागवत पुराण' का शंबर असुर है, इसका नाम अनेक तरह से पुराने साहित्य में लिखा मिलता है, शंबर भी मिलता है, संबर भी और साबर या शाबर भी। कोई विदेशी भाषा का शब्द होगा, पंडितों के नाना भाव से सुधार कर लिख लिया होगा। यह इंद्रजाल या जादू विद्या का आचार्य माना जाता है अर्थात् 'यातुधान' है। यातु और जादू शब्द एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न रूप हैं। एक भारतवर्ष का है, दूसरा ईरान का। ऐसे अनेक शब्द है। ईरान में थोड़ा बदल गए हैं और हम लोग उन्हें विदेशी समझने लगे हैं। 'खुदा' शब्द असल में वैदिक 'स्वधा' शब्द का भाई है। 'नमाज' भी संस्कृत 'नमस्' का सगा-संबंधी है। 'यातुधान' को ठीक-ठीक फारसी वेश में सजा दें तो 'जादूदाँ हो जायगा। 'कालिका पुराण' में शाबर असुर के नाम पर होनेवाले शाबरोत्सव का उल्लेख है, जिसमें अश्लील गाली देना और सुनना जरूरी हुआ करता था। यह उत्सव सावन में मनाया जाता था और वेश्याएँ प्रमुख रूप से उसमें भाग लेती थीं। संसार में सभी देशों में एक दिन साल में ऐसा जरूर मनाया जाता है जिसमें अश्लील गाली गलौज आवश्यक माना जाता है। अपने यहाँ फागुन चैत में इस प्रकार का उत्सव मनाया जाता है। इसी को मदनदेवता कहते हैं। मैं सोचता हूँ कि क्या मदनोत्सव के समान एक और उत्सव इस देश में प्रचलित था जिसके मुख्य उद्योक्ता असुर लोग थे? असुरों के साथ मदन देवता के संघर्ष से क्या इसीलिए दो विभिन्न संस्कृतियों का द्वंद्व प्रकट होता है? कौन बताएगा?

आर्यों को इस देश में सबसे अधिक संघर्ष असुरों से ही करना पड़ा था। दैत्यों, दानवों और राक्षसों से भी उनकी बजी थी, पर असुरों से निपटने में उन्हें बड़ी शक्ति लगानी पड़ी थी। वे भी बहुत उन्नत। हर तरह से वे सभ्य थे। उन्होंने बड़े-बड़े नगर बसाए थे। महल बनाए थे, जल-स्थल पर अधिकार जमा लिया था। गंधर्वों, यक्षों और किन्नरों से आर्यों को कभी विशेष नहीं लड़ना पड़ा। ये जातियाँ अधिक शक्तिप्रिय थीं। विलासिता की मात्रा इनमें कुछ अधिक थी। कामदेवता या कंदर्प वस्तुतः गंधर्व ही हैं।

केवल उच्चारण बदल गया है। ये लोग आर्यों से मिल गए थे। असुरों ने इनसे बदला लिया था। पर अंत तक असुर विजयी नहीं हुए उनका संघर्ष असफल सिद्ध हुआ।

लेकिन आम्र-मंजरी के साथ बिच्छू का संबंध अब भी मुझे चक्कर में डाले हुए है। पोथियाँ पढ़ता हूँ, उनका सम्मान भी करता हूँ, पर लोकप्रवादों को हँसकर उड़ा देने की शक्ति अभी संचय नहीं कर सका हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि इन प्रवादों में मनुष्य समाज का जीवंत इतिहास सुरक्षित है। जब कभी लोक-परंपरा के साथ किसी पोथी का विरोध हो जाता है, तो मेरे मन में कुछ नवीन रहस्य पाने की आशा उमड़ उठती है। सब समय नई बात सूझती नहीं, पर हार मैं नहीं मानता। कभी-कभी तो बड़े-बड़े पंडितों की बात में मुझे असंगति दिख जाती है। कहने में हिचकता हूँ, नए पंडितों के क्रोध से डरता हूँ, पर मन से यह बात किसी प्रकार नहीं जाती कि पंडित की बात की संगति लोक परंपरा से ही लग सकती है। कहीं जैसे कुछ छूट रहा हो, कुछ भूल रहा हो। एक उदाहरण दूँ।

क्षेमेंद्र बहुत बड़े सहृदय और बहुश्रुत आचार्य थे। उन्होंने बहुत सी पोथियाँ लिखी हैं। एक का नाम है 'औचित्य-विचार-चर्चा'। उसमें उन्होंने संज्ञा शब्दों के औचित्य के प्रसंग में कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' नाटक का वह श्लोक उद्‌भुत किया है जिसमें राजा ने विरहातुर अवस्था में कहा है कि वैसे ही तो दुर्लभ वस्तुओं के लिए मचल पड़नेवाला पंचबाण (कामदेव) मेरे चित्त को छलनी किए डालता है, अब मलय-पवन से आंदोलित इन आम्र-वृक्षों ने अंकुर दिखा दिए। अब तो बस भगवान ही मालिक हैं :

इदमसुलभवस्तुप्रार्थनादुर्निवारः

प्रथममपि मनो मे पंचबाणः क्षिणोति।

किमतु मलयवातान्दोलितैः पाण्डुपत्रै -

रुपवनसहकारैर्दर्शितेष्वंकुरेषु।।

अब सहृदय शिरोमणि क्षेमेंद्र कहते हैं कि यह कामदेव को पंचबाण कहना उचित ही हुआ है। कामदेव के पंचबाणों में एक तो यही आम्रमंजरी का अंकुर है। लेकिन मैं बिल्कुल उलटा सोच रहा हूँ। मैं कहता हूँ, पंचबाण कहने से ही तो आम्रकोरक भी कह डाले गए, फिर दुबारा उनकी चर्चा करना कहाँ संगत है? मैं अगर अच्छा पंडित होता तो क्षेमेंद्र की भी गलती निकालता और कालिदास का भी अनौचित्य सिद्ध करता, लेकिन खेद के साथ कहता हूँ कि मैं 'अच्छा' पंडित नहीं हूँ। मेरा मन पूछता है कि क्या कालिदास आम्रमुकुलों को मदनदेवता के पाँच बाणों में नहीं गिनते थे? वैसे तो संसार के सभी फूल मदनदेवता के तूणीर में आ ही सकते हैं, पर कालिदास के युग में लोक-प्रचलित कोई विश्वास ऐसा अवश्य रहा होगा कि आम पाँच बाणों से अतिरिक्त है। ऐसा न होता तो कालिदास इस श्लोक में 'पंचबाण' शब्द का प्रयोग न करते। सबूत दे सकता हूँ। पर सुनता कौन है? कालिदास ने एक जगह आम्र कोरकों को यह आशीर्वाद दिलाया है कि तुम काम के पाँच बाणों से अभ्यधिक बाण बनो। इस 'अभ्यधिक' शब्द का सीधा अर्थ तो यही मालूम होता है कि पाँच से अधिक छठा बाण बनो। पर पंडित लोग कहते हैं कि इसका सही

अर्थ है पाँचों में सबसे अधिक तीक्ष्ण। होगा बाबा, कौन झमेले में पड़े। क्या अतीत के अंधकार में झाँकने से कुछ दिख नहीं सकता? मदनदेवता हमारे साहित्य में कब आए और उनके बाणों का भी क्या कोई इतिहास है? और फिर बिच्छू से इसका कोई नाता-रिश्ता भी है क्या?

पुराणों की गवाही पर मान लिया जा सकता है कि असुरों की आखिरी हार अनिरुद्ध और ऊषा के विवाह के अवसर पर हुई थी। असुरों की ओर से भगवान शंकर का समूचा दल लड़ रहा था। शिवजी श्रीकृष्ण से गुँथे थे, प्रद्युम्न अर्थात् कामदेवता स्कंद (देवसेनापति) से। शिवजी के दल में भूत थे, प्रथम थे, यातुधान थे, बेताल थे, विनायक थे, डाकिनियाँ थीं, प्रेत थे, पिशाच थे, कूष्मांड थे, ब्रह्मराक्षस थे - यानी पूरी सेना थी, साँप बिच्छू भी रहे होंगे। और तो, मलेरिया का बुखार भी था। इस लड़ाई में असुर बुरी तरह हारे। शिवजी भी हारे। देवताओं के दुर्धर्ष सेनापति को कामावतार प्रद्युम्न से हारना पड़ा। मोर समेत बेचारे भाग खड़े हुए। भागवत में यह कथा बड़े बिस्तार से कही गई है। इसके बाद इतिहास में कही असुरों ने सिर नहीं उठाया। शिवजी की सेना प्रथम बार पराजित हुई। कैसे और कब प्रद्युम्न ने आम्रकोरकों का बाणसंधान किया और बेचारा बिच्छू परास्त हुआ, यह कहानी इतिहास में दबी रह गई। लेकिन लोग जान गए हैं और बच्चों की दुनिया को भी पता लग ही गया है।

मैं दूसरी बात सोच रहा हूँ। फूल तो दुनिया में अनेक हैं। आम, लेकिन, फूल की अपेक्षा फल-रूप में अधिक विख्यात है। कवि लोगों की बात छोड़िए। वे लोग कभी-कभी बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बोलते ही हैं। अपने भीतर जरा सी सुड़सुड़ी हुई नहीं कि समझ लेते हैं कि सारी दुनिया इसी प्रकार पागल हो गई है। हम लोग भी जानते हैं कि आम की मंजरी मादक होती है कि जब दिगंत सहकार मंजरी के केसर से मूर्च्छमान हो और मधुपान के लिए व्याकुल बने हुए भौंरे गली-गली घूम रहे हों, तो ऐसे भरे वसंत में किसके चित्त में उत्कंठा नहीं लहरा उठती?

सहकारकुसुमकेसरनिकरभरामोदमूर्च्छितदिगन्ते।

मधुरमधुविधुरमधुपे मधौ भवेत् कस्य नोत्कण्ठा?

अब अगर किसी सभा में आप यही सवाल पूछ बैठें, तो प्रायः सौ फीसदी भले आदमी ही 'मम' 'मम' कहकर चिल्ला उठेंगे। पर कवि तो अपनी ही सी कहे जायगा। लेकिन बढ़िया लँगड़ा आम दिखाकर अगर आप पूछें कि इसे पाने की उत्कंठा किसे नहीं है, तो सारी सभा चुप रहेगी। बस मन ही मन कहेंगे, ऐसा भी पूछना क्या उचित है? आम देखकर किसका जी नहीं ललचाएगा? एक बार कविवर रवींद्रनाथ चीन गए थे। उन्हें आम खाने को नहीं मिला। उन्होंने अपने एक साथी से विनोद में कहा, 'देखिए, मैं जितने दिन तक जियूँ उसका हिसाब कर लेने के बाद उसमें से एक साल कम कर दीजिएगा, क्योंकि जिस साल में आम खाने को नहीं मिला उसको मैं व्यर्थ समझता हूँ।' अब तक यह रिपोर्ट नहीं मिली कि किसी कवि ने आम्र मंजरी की सुगंधि न पाने के कारण अपने जीवन के किसी वर्ष को व्यर्थ समझा हो। तो, मेरा कहना यह है कि आम के फूलों का वर्णन इतना होना ही नहीं चाहिए। अरविंद का हो, अशोक का हो, नवमल्लिका का हो, नीलोत्पल का हो, इनमें फल या तो आते ही नहीं या आते भी हैं तो

नहीं आने के बराबर। ये काम देवता के अस्त्र बन सकते हैं, क्योंकि ये अप्सरा जाति के पुष्प हैं। इनका सौंदर्य केवल दिखावे का है। कामदेवता के ये दुलारे हो सकते हैं। पर आम को क्यों घसीटते हो बाबा? यह अन्नपूर्णा का प्रसाद है। यह धन्वंतरि का अमृत कलश है। यह धरती माता का मधुर दुग्ध है।

मेरा अनुमान है कि आम पहले इतना खट्टा होता था और इसका फल इतना छोटा होता था कि इसके फल को कोई व्यवहार में नहीं लाता था। संभवतः यह भी हिमालय के पार्वत्य देश का जंगली वृक्ष था। इसके मनोहर कोरक और दिगंत को मूर्च्छित कर देने वाला आमोद ही लोकचित्त को मोहित करते थे। धीरे-धीरे यह फल मैदान में आया। मनुष्य के हाथ-रूपी पारस से छूकर यह लोहा भी सोना बन गया है। गंगा की सुवर्णप्रसू मुत्तिका ने इसका कायाकल्प कर दिया है। मैं आश्चर्य से मनुष्य की अद्‌भुत शक्ति की बात सोचता हूँ। आलू क्या से क्या हो गया। बैगन कंटकारी से वार्ताकु बन गया। आम भी उसी प्रकार बदला है। न जाने मनुष्य के हाथों विधाता की सृष्टि में अभी क्या-क्या परिवर्तन होनेवाले हैं। आज जो दुर्भिक्ष और अन्न-संकट का हाहाकार चित्त को मथ रहा है, वह शाश्वत होकर नहीं आया है। मनुष्य उस पर विजयी होगा। कितने अव्यवहार्य पदार्थों को उसने व्यवहार्य बनाया है, कितनी खटाई उसके हाथों 'अमृत' बनी है। कौन जाने यह महान 'गोधूम' लता (गेहूँ) किसी दिन सचमुच गायों को लगनेवाले मच्छरों को भगाने के लिए धुआँ पैदा करने के काम आती हो? निराश होने की कोई बात नहीं है। मनुष्य इस विश्व का दुर्जेय प्राणी है।

हाँ, तो उसी बहुत पुराने जमाने में गंधर्व या (जैसा कि इसका एक दूसरा उच्चारण संस्कृत में प्रचलित है) कंदर्प देवता ने अपने तरकस में इस बाण को सजाया था। कवियों को उसी आदिम काल का संदेश बसंत में सुनाई देता है। लोग क्या गलत कहा करते हैं कि 'जहाँ न जाय रवि तहाँ जाय कवि?' किस भूले युग की कथा वे आज भी गाए जा रहे हैं? कालिदास जरूर कुछ झिझके थे। शायद उनके जमाने में सहृदय लोग आम को अरविंद, अशोक और नवमालिका की पंगत में बैठाने में हिचकते थे। अच्छा करते थे। वात्स्यायन 'कामसूत्र' में जहाँ आम और माधवीलता के विवाह के विशुद्‌ध विनोद का उत्सव सुझा गए हैं, वहाँ नवाम्रखादनिका या आम के नए टिकोरों को खाने के उत्सव को भूले नहीं हैं। आम की मंजरी विधाता का वरदान है, पर आम का फल मनुष्य की बुद्‌धि का परिणाम है। मनुष्य प्रकृति को अनुकूल बना देने वाला अद्‌भुत प्राणी है। यह विशाल विश्व आश्चर्यजनक है, पर इसको समझने के लिए प्रयत्न करनेवाला और इसे करतलगत करने के लिए जूझनेवाला यह मनुष्य और भी आश्चर्यजनक है। आम्रमंजरी उसी अचरज का संदेश लेकर आई है। 'उदुमंगल तुमंपसाएमि'।।

रंगमंच वह स्थान है जहाँ नृत्य, नाटक, खेल आदि हो। रंगमंच शब्द रंग और मंच दो शब्दों के मिलने से बना है। रंग इसीलिए प्रयुक्त हुआ है कि दृश्य को आकर्षक बनाने के लिए दीवारों, छतों, और परदों पर विविध प्रकार की चित्रकारी की जाती है और अभिनेताओं की वेश भूषा तथा सज्जा में भी विविध रंगों का प्रयोग होता है। और मंच इसीलिए प्रयुक्त हुआ है कि दर्शकों की सुविधा के लिए रंगमंच का तल फर्श से कुछ ऊंचा रहता है। दर्शकों के बैठने के स्थान को प्रेक्ष्यागार, रंगशाला या नाट्यशाला कहते हैं। पश्चिमी देशों में इसे थिएटर या ऑपेरा नाम दिया जाता है ।

- हिंदी रंगमंच से अभिप्राय हिंदी और उसकी बोलियों के रंगमंच से हैं। हिंदी रंगमंच की जड़ें रामलीला और रासलीला से आरंभ होती हैं। हिंदी रंगमंच पर संस्कृत नाटकों का भी प्रभाव है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र हिंदी रंगमंच के पुरोधा हैं।

• भारतीय रंगमंच

- भारत में रंगमंच का इतिहास बहुत पुराना है। ऐसा समझा जाता है कि नाट्यकला का विकास सर्वप्रथम भारत में ही हुआ। ऋग्वेद के कतिपय सूत्रों में यम और यमी, पुरुरवा और ऊर्वशी आदि के कुछ संवाद हैं। अनुमान किया जाता है कि इन्हीं की रचना की और नाट्यकला का विकास हुआ। यथा समय भरतमुनि ने उसे शास्त्रीय रूप दिया।

• परिचय

- **भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नाटकों के विकास की प्रक्रिया को इस प्रकार व्यक्त किया है -**

• नाट्यकला की उत्पत्ति दैवीय है, अर्थात दुःखरहित सत्ययुग बीत जाने पर त्रेतायुग के आरंभ में देवताओं ने स्रष्टा ब्रम्हा से मनोरंजन का कोई ऐसा साधन उत्पन्न करने की प्रार्थना की जिस से देवता लोग अपना दुःख भूल सकें और आनंद प्राप्त कर सकें। फलतः उन्होंने ऋग्वेद से कथोपकथन, सामवेद से गायन यजुर्वेद से अभिनय और अथर्वेद से रस लेकर नाटक का निर्माण किया। विष्वकर्मा ने रंगमंच बनाया आदि।

• नाटकों का विकास चाहे जिस प्रकार हुआ हो, संस्कृत साहित्य में नाट्य ग्रंथ और तत्सम्बन्धी अनेक शास्त्रीय ग्रंथ लिखे गए और साहित्य में नाटक लिखने की परिपाटी संस्कृत आदि से होती हुई हिंदी को भी प्राप्त हुई। संस्कृत नाटक उत्कृष्ट कोटि के हैं और वे अधिकतर अभिनय करने के उद्देश्य से लिखे जाते थे, अभिनीत भी होते थे, बल्कि नाट्यकला प्राचीन भारतीयों के जीवन का अभिन्न अंग थी, ऐसा संस्कृत तथा पाली ग्रंथों के अन्वेषण से ज्ञात होता है।

• कौटिल्य के अर्थशास्त्र से तो ऐसा ज्ञात होता है कि नागरिक जीवन के इस अंग पर राज्य को नियंत्रण करने की आवश्यकता पड़ गई थी। उसमें नाट्यगृह का एक प्राचीन वर्णन प्राप्त होता है। अग्निपुराण, शिल्परत्न, काव्यमीमांसा तथा संगीतमर्तण्ड में भी राजप्रासाद के नाट्यमण्डपों के विवरण प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार महाभारत में रंगशाला का उल्लेख है और हरिवंश पुराण तथा रामायण में नाटक खेले जाने का वर्णन है।

• भारत के आदिकालीन रंगमंच

• भारत में जब रंगमंच की बात होती है तो ऐसा माना जाता है कि छत्तीसगढ़ में स्थित रामगढ़ के पहाड़ पर महाकवि कालिदास जी द्वारा निर्मित एक प्राचीनतम नाट्यशाला मौजूद है। रामगढ़ सरगुजा जिले के उदयपुर क्षेत्र में है। यह अम्बिकापुर - रामपुर हाइवे पर स्थित है। मान्यताओं के अनुसार कवि कालिदास जी ने अपने महाकाव्य मेघदूत की रचना भी रामगढ़ के पहाड़ पर ही की थी। इस आधार पर यह भी कहा जाता है कि अंबिकापुर जिले के रामगढ़ पहाड़ पर स्थित महाकवि कालिदास जी द्वारा निर्मित नाट्यशाला भारत की सबसे पहली नाट्यशाला है।

• सितावंग की गुफा के देखने से पुराने नाट्यमंडपों के स्वरूप का कुछ अनुमान हो जाता है। यह गुफा 13.8 मीटर लंबी तथा 7.2 मीटर चौड़ी है। भीतर भाग में रंगमंच की व्यवस्था है। यह 2.3 मीटर चौड़ी तीन सीढ़ियों से बनी है, जो एक दूसरे से 75 सेमी ऊंची है। चबूतरों के सामने दो छेद है, जिनमें शायद बांस या लकड़ी के खंभे लगाकर पर्दे लगाए जाया करते थे। दर्शकों के लिए जो स्थान है, वह ग्रीक एफी थिएटर की भांति सीढ़ी नुमा है। यहां 50 व्यक्ति बैठ सकते है। यह आदिकालीन रंगमंच का स्वरूप भी ऊपर वर्णित विकसित स्वरूप से मेल खाता है।

• पाश्चात्य रंगमंच

• यूनान और रोम की प्राचीन सभ्यता में हम चौथी शती ई. पूर्व में रंगमंच होने की कल्पना कर सकते है। इतिहास प्रसिद्ध डायोनीसन का थिएटर एथेंस में आज भी उस काल की याद दिलाता है। एक अन्य थिएटर एपीडारस में है, जिस का नृत्यमंच गोल है। 364 ई. पूर्व रोमवाले इट्रस्कैन अभिनेताओं की एक मंडली अपने नगर में लाए और उनके लिए "सर्कस मैक्सियस" में पहला रोमन रंगमंच तैयार किया ।

• लगभग दूसरी शती में रंगमंच कामदेव का स्थान माना जाने लगा । ईसाइयत के जन्म लेते ही पादरियों ने नाट्यकला कों ही हेय मान लिया। गिरजाघर ने थिएटर का ऐसा गला घोंटा कि वह आठ शताब्दियों तक न पनप सका। कुछ उत्साही पादरियों ने तो यहां तक फतवा दिया कि रोमन साम्राज्य के पतन का कारण थिएटर ही है। रोमन रंगमंच का अंतिम संदर्भ 533 ई. का मिलता है।

• किन्तु धर्म जनसामान्य की आनंद मनाने की भावना को न दबा सका और लोकनृत्य तथा लोकनाट्य छिपे छिपे ही सही, पनपते रहे। जब ईसाइयों ने इतर जातियों पर आधिपत्य कर लिया, तो एक मध्यम मार्ग अपनाना पड़ा। रीति रिवाजों में फिर से इस कला का प्रवेश हुआ। बहुत दिनों तक गिरजाघर ही नाट्यशाला का काम देता रहा और वेदी ही रंगमंच बनी। 10वीं से 13वीं शताब्दी तक बाइबिल की कथाएँ ही प्रमुखतः अभिनय का आधार बानी, फिर धीरे धीरे अन्य कथाएं भी आई। किन्तु ये नाटक स्वन्त्र ही रहे गये। चिर प्रतिष्टित रंगमंच, जो यूरोप भर में जगह जगह टूटे फूटे पड़े थे फिर न अपनाए गए।

• 14वीं शताब्दी में फिर से नाट्यकला का जन्म हुआ और लगभग 16वीं शताब्दी में उसे प्रौढ़ता प्राप्त हुई शाही महलों की अत्यंत सजी धजी नृत्यशालाएँ नाटकीय रंगमंच में परिणत हो गई। बाद में उद्यानों में भी रंगशालाएँ बनी। जिनमें अनेक दीवारों के स्थान पर वृक्षावली या झाड़बंदी ही हुआ करती थी।

• रंगमंच का विकास विसेंजा और परमा में बनी हुई रंगशालाओं से स्पष्ट परिलक्षित होता है। विसेंजा की ओलिंपियन अकादमी में एक सुंदर रंगशाला सन 1580 - 85 में बनी, जिस पर छत भी थी। आगे चल कर सन 1618 - 19 में परमा थिएटर में समूचा रंगमंच ही पीछे कर दिया गया और पृष्ठभूमि

की चित्रित दीवार आगे आ गई। जिस पर बीच मे बने एक बड़े द्वार से ही नाटक देखा जा सकता है । इस द्वार पर पर्दा लगाया जाने लगा। पर्दा उठाने पर दृश्य किसी फ्रेम में जड़ी तस्वीर जैसा दिखाई पड़ता है। रंगमंच में भी दृश्यों के अनुकूल प्रभाव उत्पन्न करने के लिए अनेक पर्दो लगाए जाने लगे। मिलान का 'ला स्काला ' ऑपेरा हाउस 18 वीं - 19 वीं शती में रंगमंच के विकास का आदर्श माना जाता है ।

- रंगमंच विशिष्ट वर्ग का ही नहीं, जनसामान्य के मनोरंजन का साधन बना। किन्तु प्रोटेस्टेट सम्प्रदाय द्वारा इसका विरोध भी हुआ और फलस्वरूप 1642 ई. में नाट्यकला पर रोक लग गई। धीरे धीरे दरबारियों और जनता का आग्रह प्रबल हुआ और रोक हटानी पड़ी। मार्लो , शेक्सपियर , तथा जानसन आदि के विस्वविश्रुत नाटक पुनः प्रकास में आए। ग्लोब थिएटर एलिजबेथ कालीन रंगमंच का प्रतिनिधि है। इसमें पुरानी धर्मशालाओं का स्वरूप परिलक्षित होता है। जहाँ पहले नाटक खेले जाते थे। प्रांगण के बीच मे रंगमंच होता था और चारों और तथा छत्तों में दर्शकों के बैठने का स्थान रहता था।

इस तरह रंगमंच ने, चाहे वह भारतीय रंगमंच हो या पाश्चात्य रंगमंच, आज के स्वरूप को प्राप्त करने हेतु अनेक रोचक उतार चढाव भरे राह से होकर आज यहां तक पहुंचा है, और टी. वी., सिनेमा जैसे आधुनिक मनोरंजन के साधनों के होते हुये भी अपनी जगह अटल और अचल बनाये रखा है।

लिज़ा मिश्र, +3 तृतीय वर्ष

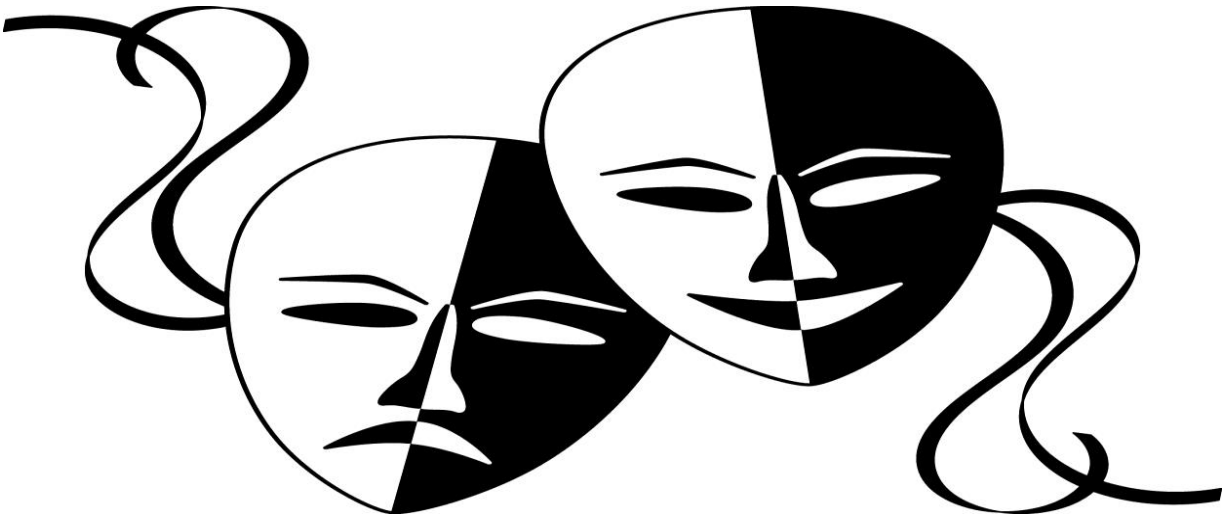

चुनाव

सुबह के चार बजे, श्रिया अपने बिस्तर से उठी और सीधा बाथरूम गयी। अपने चेहरे को अच्छे से धोया फिर आईने में अपने चेहरे को देखा। रात भर वो सो नहीं पाई थी। चिंता के कारण उसकी आंखों से आँसू भी निकल रहे थे। लेकिन ये फैसले की घड़ी थी। पूरी रात उसने सोचा लेकिन किसी फैसले पर पहुंच नहीं सकी। 12 बजने में अभी कुछ ही घंटे बाकी है। उसे आज विजय को जबाब देना ही होगा। किन्तु घर में इस सब के बारे में किसी को कुछ नहीं पता था।

श्रिया की उम्र 18 साल होगी, जब विजय को उसने पहली बार अपने सहली के घर में देखा था, विजय उससे पांच साल बड़ा होगा। पहली मुलाकात में दोनों के मन में एक अजीब हलचल पैदा हो गयी थी। श्रीया बचपन से शहर में पली बढ़ी है। उसे आधुनिक तौर तरीके सब मालूम है। अतः वो इस हालचल या आकर्षण को गहराई से न लेकर एक टाइम पास के नजरिये से देखती है। विजय भी इसी सोच का अधिकारी था। फिर धीरे धीरे मुलाकात बातचीत में ओर टाइम पास गहरे प्यार में परिवर्तित हो जाता है। इसी बीच चार साल बीत चुके है। लेकिन इन दोनों के रिश्ते के बारे में घर में किसी को कुछ भी मालूम नहीं है।

श्रिया की स्नातक की पढ़ाई पूरी हो चुकी है। और हाल ही में उसका परिणाम निकला है। उसका परिणाम भी अच्छा निकला है। विजय से प्यार करने के बावजूद वो पढ़ाई को गंभीरता से लेती है। उसके अपने कुछ सपने हैं। जिन्हें वह पूरा करना चाहती है। घर वाले भी चाहते है कि उनकी बेटी आगे बढ़े। अपने माता पिता की श्रिया इकलौती बेटी नहीं है, उसकी एक बड़ी बहन भी है। जो शादी करके अपनी खुशहाल संसार में व्यस्त है। श्रिया भी उसकी तरह

अपनी जिंदगी चाहती है। किंतु उससे पूर्व उसे अपने पिता माता की चिंता है। क्योंकि उसके बाद और कोई नहीं है जो उनका खयाल रख सके। इसीलिए वो नौकरी करना चाहती है। अपने परिवार का खयाल रखना चाहती है, और साथ ही विजय से शादी करके एक खुशहाल संसार भी चाहती है। किन्तु विजय की सोच इसके विपरीत है। वह पुराने ख़यालात का लड़का है, जो चाहता है कि उसकी होने वाली पत्नी नैकरी न करे बल्कि सिर्फ घर सम्हाले। इसी सोच के कारण विजय ओर श्रिया के बीच दरार पैदा होती है। इस के कारण उनके बीच बहुत बार झगड़ा भी हो चुका है। अब ये झगडे एक ज्वालामुखी का रूप लेने लगे हैं। विजय ने उसे साफ - साफ कह दिया कि

" तुम्हें एक ही चीज़ चुननी होगी। मेरे साथ की जिंदगी या अपने सोच की जिंदगी। इसका जबाव मुझे काल 12 बजे तक चाहिए।मु झे पता है कि तुम मेरे बीना नहीं जी सकती। जो भी निर्णय लोगी सोच विचार के लोगी।" यह कहकर विजय वहां से चला जाता है।

इसका निर्णय लेना श्रीया के लिए आसान न था। वह कैसे अपने चार साल के प्यार को भूल सकती है। जो उसके जीवन की हर एक पल को बेहतर बनाती है। इसी बीच उसके घर आज उसकी बड़ी बहन आई हुई है। उसके साथ उसका बेटा भी आया है। श्रिया का उतरा हुआ चेहरा देख कर बहन ने उससे कारण पूछा। मदद की आस में बिना कुछ छिपाए श्रिया ने उन्हें सारि बात कह डाली। उसकी सारी बातें सुनने के बाद बहन ने कहा - " मैं उस इन्सान को तो नहीं जानती जिसे तू प्यार करती है। लेकिन तेरी बातें सुनकर मुझे लगता है कि वो लड़का तुझसे प्यार नहीं बल्कि एक समझौता करना चाहता है। जिसे लेकर तू उसकी इच्छा को पूरी कर सके। ये तेरी खुद की जिंदगी है तुझे जो अच्छा लगे तू वही कर। लेकिन उससे पहले तू उन लोगों के बारे में सोच, जिनके जीवन में तेरी एहमियत ज्यादा है। जिंदगी यही एक फैसले से खतम नहीं होती। आगे तेरी मरजी ।"

अपनी बहन की बात सुनने के बाद ओर कुछ सोचने की जरूरत नहीं पड़ी। 12 बजने में अभी 2 घंटे बाकी थे कि उसने विजय को फ़ोन किया। विजय ने फ़ोन उठाया, उसके कुछ बोलने से पहले ही श्रिया ने कहा - " तुम्हारे साथ बिताये हर पल मुझे हमेशा याद रहेंगे।तु मने मुझे जीवन की वो शिक्षा दी, जो शायद मैं किसी और से नहीं पा सकती थी। अतः मैं तुम्हारी जगह अपने आप को चुनती हूँ।" फिर उसने फ़ोन रख दिया और बिस्तर पर जा कर लेट गयी अपनी रात की नींद पूरी करने के लिये ।

पिंकी सिंह, +3 तृतीय वर्ष

तिरूमल्लै नंबाकम वीर राघव आचार्य - रांगेय राघव

जीवनी

तिरूमल्लै नंबाकम वीर राघव आचार्य रांगेय राघव (१७ जनवरी, १९२३ - १२ सितंबर, १९६२) हिंदी के उन विशिष्ट और बहुमुखी प्रतिभावाले रचनाकारों में से हैं जो बहुत ही कम उम्र लेकर इस संसार में आए, लेकिन जिन्होंने अल्पायु में ही एक साथ उपन्यासकार, कहानीकार, निबंधकार, आलोचक, नाटककार, कवि, इतिहासवेत्ता तथा रिपोर्ताज लेखक के रूप में स्वंय को प्रतिस्थापित कर दिया, साथ ही अपने रचनात्मक कौशल से हिंदी की महान सृजनशीलता के दर्शन करा दिए। आगरा में जन्मे रांगेय राघव ने हिंदीतर भाषी होते हुए भी हिंदी साहित्य के विभिन्न धरातलों पर युगीन सत्य से उपजा महत्त्वपूर्ण साहित्य उपलब्ध कराया। ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर जीवनीपरक उपन्यासों का ढेर लगा दिया। कहानी के पारंपरिक ढाँचे में बदलाव लाते हुए नवीन कथा प्रयोगों द्वारा उसे मौलिक कलेवर में विस्तृत आयाम दिया। रिपोर्ताज लेखन, जीवनचरितात्मक उपन्यास और महायात्रा गाथा की परंपरा डाली। विशिष्ट कथाकार के रूप में उनकी सृजनात्मक संपन्नता प्रेमचंदोत्तर रचनाकारों के लिए बड़ी चुनौती बनी।

इनका मूल नाम तिरूमल्लै नंबाकम वीर राघव आचार्य था; लेकिन उन्होंने अपना साहित्यिक नाम 'रांगेय राघव' रखा। इनका जन्म १७ जनवरी, १९२३ श्री रंगाचार्य के घर हुआ था। इनकी माता श्रीमती कनकवल्ली और पत्नी श्रीमती सुलोचना थीं। इनका परिवार मूलरूप से तिरुपति, आंध्र प्रदेश का निवासी था। 'वैर' गाँव के सहज, सादे ग्रामीण परिवेश में उनके रचनात्मक सहित्य ने अपना आकार गढ़ना शुरू किया। जब उनकी सृजन-शक्ति अपने प्रकाशन का मार्ग ढूँढ़ रही थी तब देश स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत था। ऐसे वातावरण में उन्होंने अनुभव किया- अपनी मातृभाषा हिंदी से ही देशवासियों के मन में देश के प्रति निष्ठा और स्वतंत्रता का संकल्प जगाया जा सकता है। यों तो उनकी सृजन-यात्रा सर्वप्रथम चित्रकला में प्रस्फुटित हुई।

सन् १९३६-३७ के आस-पास जब वह साहित्य की ओर उन्मुक हुई तो उसने सबसे पहले कविता के क्षेत्र में कदम रखा और इसे संयोग ही कहा जाएगा कि उनकी रचनात्मक अभिव्यक्ति का अंत भी मृत्यु पूर्व लिखी गई उनकी एक कविता से ही हुआ। उनका साहित्य सृजन भले ही कविता से शुरू हुआ हो, लेकिन उन्हें प्रतिष्ठा मिली एक गद्य लेखक के रूप में। सन् १९४६ में प्रकाशित 'घरौंदा' उपन्यास के जरिए वे प्रगतिशील कथाकार के रूप में चर्चित हुए। १९६२ में उन्हें कैंसर रोग से पीड़ित बताया गया था। उसी वर्ष १२ सितंबर को उन्होंने मुंबई (तत्कालीन बंबई) में देह त्यागी।

रचना संसार

उनका विपुल साहित्य उनकी अभूतपूर्व लेखन क्षमता को दर्शाता है। जिसके संदर्भ में कहा जाता रहा है कि 'जितने समय में कोई पुस्तक पढ़ेगा उतने में वे लिख सकते थे। वस्तुतः उन्हें कृति की रूपरेखा बनाने में समय लगता था, लिखने में नहीं।' रांगेय राघव सामान्य जन के ऐसे रचनाकार हैं जो प्रगतिवाद का लेबल चिपकाकर सामान्य जन का दूर बैठे चित्रण नहीं करते, बल्कि उनमें बसकर करते हैं। समाज और इतिहास की यात्रा में वे स्वयं सामान्य जन बन जाते हैं। रांगेय राघव ने वादों के चौखटे से बाहर रहकर सही मायने में प्रगितशील रवैया अपनाते हुए अपनी रचनाधर्मिता से समाज संपृक्ति का बोध कराया। समाज के अंतरंग भावों से अपने रिश्तों की पहचान करवाई। सन् १९४२ में वे मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित दिखे थे, मगर उन्हें वादग्रस्तता से चिढ़ थी। उनकी चिंतन प्रक्रिया गत्यात्मक थी। उन्होंने प्रगतिशीस लेखक संघ की सदस्यता ग्रहण करने से इनकार कर दिया, क्योंकि उन्हें उसकी शक्ति और सामर्थ्य पर भरोसा नहीं था। साहित्य में वे न किसी वाद से बँधे, न विधा से। उन्होंने अपने ऊपर मढ़े जा रहे मार्क्सवाद, प्रगतिवाद और यथार्थवाद का विरोध किया। उनका कहना सही था कि उन्होंने न तो प्रयोगवाद और प्रगतिवाद का आश्रय लिया और न प्रगतिवाद के चोले में अपने को यांत्रिक बनाया। उन्होंने केवल इतिहास को, जीवन को, मनुष्य की पीड़ा को और मनुष्य की उस चेतना को, जो अंधकार से जूझने की शक्ति रखती है, उसे ही सत्य माना।

रांगेय राघव ने जीवन की जटिलतर होती जा रही संरचना में खोए हुए मनुष्य की, मनुष्यत्व की पुनर्रचना का प्रयत्न किया, क्योंकि मनुष्यत्व के छीजने की व्यथा उन्हें बराबर सालती थी। उनकी रचनाएँ समाज को बदलने का दावा नहीं करतीं, लेकिन उनमें बदलाव की आकांक्षा जरूर हैं। इसलिए उनकी रचनाएँ अन्य रचनाकारों की तरह व्यंग्य या प्रहारों में खत्म नहीं होतीं, न ही दार्शनिक टिप्पणियों में समाप्त होती हैं, बल्कि वे मानवीय वस्तु के निर्माण की ओर उद्यत होती हैं और इस मानवीय वस्तु का निर्माण उनके यहाँ परिस्थिति और ऐतिहासिक

चेतना के द्वंद से होता है। उन्होंने लोग-मंगल से जुड़कर युगीन सत्य को भेदकर मानवीयता को खोजने का प्रयत्न किया तथा मानवतावाद को अवरोधक बनी हर शक्ति को परास्त करने का भरसक प्रयत्न भी। कुछ प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियों के उत्तर रांगेय राघव ने अपनी कृतियों के माध्यम से दिए। इसे हिंदी साहित्य में उनकी मौलिक देन के रूप में माना गया। ये मार्क्सवादी विचारों से प्रेरित उपन्यासकार थे। भगवतीचरण वर्मा द्वारा रचित 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' के उत्तर में 'सीधा-सादा रास्ता', 'आनंदमठ' के उत्तर में उन्होंने 'विषादमठ' लिखा। प्रेमचंदोत्तर कथाकारों की कतार में अपने रचनात्मक वैशिष्ट्य, सृजन विविधता और विपुलता के कारण वे हमेशा स्मरणीय रहेंगे।

उपन्यास

विषाद मठ, उबाल, राह न रुकी, बारी बरणा खोल दो, देवकी का बेटा, रत्ना की बात, भारती का सपूत, यशोधरा जीत गयी, घरौंदा, लोई का ताना, लखिमा की आँखें, मेरी भव बाधा हरो, कब तक पुकारूँ, चीवर, राई और पर्वत, आख़िरी आवाज़, बन्दूक और बीन।

कहानी संग्रह

संकलित कहानियाँ : (पंच परमेश्वर, अवसाद का छल, गूंगे, प्रवासी, घिसटता कम्बल, पेड़, नारी का विक्षोभ, काई, समुद्र के फेन, देवदासी, कठपुतले, तबेले का धुंधलका, जाति और पेशा, नई जिंदगी के लिए, ऊंट की करवट, बांबी और मंतर, गदल, कुत्ते की दुम और शैतान : नए टेक्नीक्स, जानवर-देवता, भय, अधूरी मूरत)

अंतर्मिलन की कहानियाँ

दधीचि और पिप्पलाद, दुर्वासा, परशुराम, तनु, सारस्वत, देवल और जैगीषव्य, उपमन्यु, आरुणि (उद्दालक), उत्तंक, वेदव्यास, नचिकेता, मतंग, (एकत, द्वित और त्रित), ऋष्यश्रृंग, अगस्त्य, शुक्र, विश्वामित्र, शुकदेव, वक-दालभ्य, श्वेतकेतु, यवक्रीत, अष्टावक्र, और्व, कठ, दत्तात्रेय, गौतम-गौतमी, मार्कण्डेय, मुनि और शूद्र, धर्मारण्य, सुदर्शन, संन्यासी ब्राह्मण, शम्पाक, जैन तीर्थंकर, पुरुष तथा विश्व का निर्माण, मृत्यु की उत्पत्ति, गरुड़, अग्नि, तार्क्षी-पुत्र, लक्ष्मी, इंद्र, वृत्तासुर, त्रिपुरासुर, राजा की उत्पत्ति, चंद्रमा, पार्वती, शुंभ-निशुंभ, मधु-कैटभ, मार्तंड (सूर्य), दक्ष प्रजापति, स्वरोविष, शनैश्चर, सुंद और उपसुंद, नारद और पर्वत, कायव्य, सोम, केसरी, दशाश्वमेधिक तीर्थ, सुधा तीर्थ, अहल्या तीर्थ, जाबालि-गोवर्धन तीर्थ, गरुड़ तीर्थ, श्वेत तीर्थ, शुक्र तीर्थ, इंद्र तीर्थ, पौलस्त्य तीर्थ, अग्नि तीर्थ, ऋणमोचन तीर्थ, पुरुरवस् तीर्थ, वृद्धा-संगम तीर्थ, इलातीर्थ, नागतीर्थ, मातृतीर्थ, शेषतीर्थ), दस प्रतिनिधि कहानियाँ, गदल तथा अन्य कहानियाँ, प्राचीन यूनानी कहानियाँ, प्राचीन ब्राह्मण

कहानियाँ, प्राचीन ट्यूटन कहानियाँ, प्राचीन प्रेम और नीति की कहानियाँ, संसार की प्राचीन कहानियाँ।

यात्रा वृत्तान्त

महायात्रा गाथा (अँधेरा रास्ता के दो खंड), महायात्रा गाथा, (रैन और चंदा के दो खंड)।

भारतीय भाषाओं में अनूदित कृतियाँ

जैसा तुम चाहो, हैमलेट, वेनिस का सौदागर, ऑथेलो, निष्फल प्रेम, परिवर्तन, तिल का ताड़, तूफान, मैकबेथ, जूलियस सीजर, बारहवीं रात।

माँ

माँ तो जन्नत का फूल है,

प्यार करना उसका असूल है,

दुनिया की मोहब्बत फिजूल है,

माँ की हर दुआ कबूल है,

माँ को नाराज करना

इंसान तेरी भूल है,

माँ के कदमों की मिट्टी

जन्नत की धूल है !!

सोनालि राउत, +3 तृतीय वर्ष

नुआखाई पश्चिम ओडिशा का एक मुख्य त्योहार है। नुआखाई का यह त्योहार हर साल भादो मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि अर्थात गणेश चतुर्थी के अगले दिन मनाया जाता है। इस पर्व को पूरा परिवार एक साथ मिल कर मनाता है। इस पर्व की विशेषता यही है कि जब तक पूरा परिवार साथ ना हो यह पर्व मनाया नहीं जाता है। इस दिन घर में नए धान को प्रथम बार खाया जाता है, और अच्छी फसल की खुशी में समलेई माँ और अन्य देवी देवताओं की पूजा अर्चना की जाती है।

पश्चिम ओडिशा में इस पर्व को केवल किसान ही नहीं बल्कि बड़े से छोटे हर कोई धूम धाम से मनाते हैं। नुअखाई में सभी पश्चिम ओडिशा के लोग सभी देवी देवताओं की पूजा करते हैं, और साथ ही पूर्वजों को भी याद करते हैं। नुअखाई पर्व को मुख्य रूप से ओडिशा के सम्बलपुर, बरगढ़, बलांगीर, सुंदरगढ़, बौध, सोनपुर आदि जिलों में बड़े धूम धाम से मनाया जाता है।

यह वह पर्व है जिसमें सभी लोग इकट्ठा होते हैं, और अपने परिवार और आसपास के अन्य लोगों को नुअखाई के दिन आमन्त्रित करते हैं। इस त्योहार में लोग अपने पुराने लड़ाई झगड़ों को भुला कर एक दूसरे से मेल मिलाप करते हैं।

इस पर्व से पहले सभी लोग अपने घरों की अच्छे से साफ सफाई करते हैं, और घर के सामने आंगन को गोबर पानी से लीपते है। नुअखाई के इस त्योहार में लोग अपने लिए नए कपड़े खरीदते हैं, और उस दिन के खान पान एवं पूजा का सामान खरीदते हैं। नया धान भी लाते हैं, तथा उस धान को छीलकर पीस लेते हैं।

नुआखाई त्योहार का एक महत्वपूर्ण समय होता है। जब सभी लोग घर के देवी देवताओं को नुअखाई प्रसाद चढाते हैं। घर के कोने में अपने पूर्वजों को चावल चढ़ाते हैं। उसके

बाद सभी परिवार के लोग एक साथ बैठ कर नुआ चुरा कुंडा प्रसाद खाते हैं। मिठाई, खीर, अरसा पीठा आदि खाते हैं। खुशियां मनाते हैं। अंत में अपने से बड़े व्यक्ति के पैर छू कर आशिर्वाद लेते हैं।

उसके बाद सभी लोग नाचते हैं गाते हैं। दुलदुली, मोहरी, ढोल, मंजीरा, ताशा जैसे पंचवाद्य की थाप पर गांव और शहर के युवक और युवतियां सम्बलपुर अंचल के प्रसिद्ध लोक नृत्य जैसे - डालखाई, रसरकेली, माइलाजड, चुट्कुचुटा आदि बडे उल्लास के साथ करते हैं। आज कल देश के विविध भागों में और विदेशों में भी "नुआखाई भेट्घाट" के नाम से बडे ही जोश के साथ सांस्कृतिक उत्सव भी मनाये जाने लगे हैं।

सोनिआ नायक , +3 तृतीय वर्ष

सम्बलपुरी नृत्य

समंदर

जिंदगी मेरा न हुआ,

हुआ एक समंदर

कोई न पहचानता मुझे पर

आते रहे लोग हजार।

मेरा जल न किसी काम का

फिर भी मैं हूँ मजबूर ।

अनचाहा मेहमान सा मैं हूँ

इस धरती का भार ।

सब आते, मुझसे मिलते

किंतु मेरा दुःख अपार ।

जाने अनजाने वह कर बैठते

मेरा अनेक अपकार ।

प्रकृति का मैं विशिष्ट अंश हूँ,

मूझे न किसी का डर ।

पर मनुष्यों का ये निरादर,

मुझे न कभी स्वीकार ।

अभी भी वक्त है,

सुधर जा ऐ मनुष्य जाति ,

क्योंकि तेरा विनाश करने के लिए

मेरा एक हुंकार ही है काफ़ी

पिंकी सिंह, +3 तृतीय वर्ष

प्रभा खेतान

डॉ॰ प्रभा खेतान (१ नवंबर १९४२ - २० सितंबर २००८) प्रभा खेतान फाउन्डेशन की संस्थापक अध्यक्षा, नारी विषयक कार्यों में सक्रिय रूप से भागीदार, फिगरेट नामक महिला स्वास्थ्य केन्द्र की स्थापक, १९६६ से १९७६ तक चमड़े तथा सिले-सिलाए वस्त्रों की निर्यातक, अपनी कंपनी 'न्यू होराईजन लिमिटेड' की प्रबंध निदेशिका, हिन्दी भाषा की लब्ध प्रतिष्ठित उपन्यासकार, कवयित्री तथा नारीवादी चिंतक तथा समाज सेविका थीं। उन्हें कलकत्ता चैंबर ऑफ कॉमर्स की एकमात्र महिला अध्यक्ष होने का गौरव प्राप्त था। वे केन्द्रीय हिन्दी संस्थान की सदस्या थीं।

जीवनी

कोलकाता विश्वविद्यालय से दर्शन शास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि लेने वाली प्रभा ने "ज्यां पॉल सार्त्र के अस्तित्त्ववाद" पर पीएचडी की थी। उन्होंने 12 वर्ष की उम्र से ही अपनी साहित्य यात्रा की शुरुवात कर दी थी और उनकी पहली रचना (कविता) सुप्रभात में छपी थी, तब वे सातवीं कक्षा की छात्रा थी। १९८०-८१ से वे पूर्ण कालिन साहित्यिक सेवा में लग गईं। उनके छः **कविता संग्रह**- अपरिचित उजले (१९८१), सीढ़ीयां चढ़ती ही मैं (१९८२), एक और आकाश की खोज में (१९८५), कृष्णधर्मा मैं (१९८६), हुस्नोबानो और अन्य कविताएं (१९८७), अहिल्या (१९८८) और आठ **उपन्यास** - आओ पेपे घर चले, तालाबंदी (१९९१), अग्निसंभवा (१९९२), एडस, छिन्नमस्ता (१९९३), अपने -अपने चहरे (१९९४), पीली आंधी (१९९६) और स्त्री पक्ष (१९९९) तथा दो **लघु उपन्यास** शब्दों का मसीहा सार्त्र, बाजार के बीच: बाजार के खिलाफ सभी साहित्यिक क्षेत्र में प्रशंसित रहे। फ्रांसीसी रचनाकार सिमोन द बोउवा की पुस्तक 'दि सेकेंड सेक्स' के **अनुवाद** 'स्त्री उपेक्षिता' ने उन्हें काफी चर्चित किया। इसके अतिरिक्त उनकी कई पुस्तकें जैसे बाजार बीच बाजार के खिलाफ और उपनिवेश में स्त्री जैसी रचनाओं ने उनकी नारीवादी छवि को स्थापित किया। अपने जीवन के अनछुए पहलुओं को उजागर करने वाली **आत्मकथा** 'अन्या से अनन्या' लिखकर सौम्य और शालीन प्रभा खेतान ने साहित्य जगत को चौंका दिया।

डॉ॰ प्रभा खेतान के साहित्य में स्त्री यंत्रणा को आसानी से देखा जा सकता है। बंगाली स्त्रियों के बहाने इन्होंने स्त्री जीवन में काफी बारीकी से झांकने का बखूबी प्रयास किया। आपने कई निबन्ध भी लिखे। डॉ॰ प्रभा खेतान को जहाँ स्त्रीवादी चिन्तक होने का गौरव प्राप्त हुआ वहीं वे स्त्री चेतना के कार्यों में सक्रिय रूप से भी आप हिस्सा लेती रहीं। उन्हें 'प्रतिभाशाली महिला पुरस्कार' और 'टॉप पर्सनैलिटी अवार्ड' भी प्रदान किया गया। साहित्य में उल्लेखनीय योगदान के लिये केन्द्रीय हिन्दी संस्थान का 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार' राष्ट्रपति ने उन्हें अपने हाथों से प्रदान किया।

ऐ - जिंदगी

जो रोना चाहूँ तो न रोने दे ,

जो भूलना चाहूँ तो न भूलने दे,

ये कैसा तेरा प्यार ये कैसी तेरी दिल्लगी ?

ऐ - जिंदगी ।

खुशी से अपना पीछा छुड़वाऊं,

गम के सागर में डूबना चाहूँ ।

दे दे मुझे ये उपहार जो दुआ ये तुझसे मांगी।

सूखे पेड़ सा मेरा जीवन, जो कभी न खिले

भारी पत्थर सा मेरा मन, जो किसी से भी न हिले ।

अब तो कर दे मुझे तुझसे दूर, छोड़ दे मेरा संग,

ऐ - जिंदगी

कादम्बिनी पण्डा, +3 तृतीय वर्ष

आत्मविश्लेषण

अक्सर लोग अपने अतीत के बारे में सोच कर अपना समय बरबाद करते है, और ये करना बहुत आसान है। हम उन रिश्तों का विश्लेषण करते रहते हैं जो किसी कारणवश सफल नहीं हो पाये। कभी हम अपनी की हुई गलतियों की समीक्षा करते लगते हैं तो कभी उन व्यावसायिक फैसलों के बारे में सोचने लगते हैं जिससे लाभ मिल सकता था। हम लगातार इस अफसोस में अपना समय गुजारते हैं कि काश मैंने सही फैसला लिया होता। लेकिन एक बार के लिए आप इन सब बातों के बारे में सोचना छोड़ दें। खुद के प्रति इतना कठोर ना बनें। आप एक मनुष्य हैं, और मानवों को बनाया ही इस तरह से गया है कि वो गलतियां करता रहता है। जब तक आप वही गलतियां फिर से नहीं दुहरा रहें और अतीत की गलतियों से सबक लेकर सही फैसला ले रहे हैं, तब तक आप सही राह पर हैं। उन गलतियों को स्वीकार कर आप जीवन में आगे बढ़ें। जैसा कि मार्क ट्वैन ने लिखा है, "बुद्धिमानी इसी बात में है कि बुरे अनुभव के साथ रुकने के बजाय हमें सावधानी के साथ उससे बाहर निकल आना चाहिए, वर्ना ऐसा न हो कि हमारी स्थिति उस बिल्ली की तरह हो जाए जो एक बार एक गर्म स्टोव के ढ़क्कन पर बैठ जाये तो फिर वापस कभी उस गर्म स्टोव के ढ़क्कन पर नहीं बैठती, जो अच्छा है। लेकिन अब वह कभी ठंडे स्टोव पर भी नहीं बैठेगी।" इस बात का एहसास करना कि गलतियां सभी करते हैं, हमारे आगे बढ़ने के लिए जरूरी है। हमारा आगे बढ़ना स्वच्छंद होना चाहिए। हमें परफेक्ट बनने की चाह को त्यागने और जीवन को विचारशील तरीके से देखने की आवश्यकता है। हो सकता है कि ऐसा करने पर हमारे जीवन का बहाव पहाड़ की उस जलधारा के जैसा हो जाये जो पत्तों से भरे जंगलों से गुजरती है और संघर्ष करती हुई अपनी गरिमा के साथ बहती रहती है। हम अंतत: अपने सच्चे स्वरूप और स्वभाव को देख शांति पा सकते हैं। व्यक्तिगत ज्ञान और आत्मज्ञान के उच्च स्तर को पाने का शानदार तरीका यह है कि आप अपने जीवन की बही के पन्ने की बाईं तरफ अपने जीवन में की गई दस बड़ी गलतियों के बारे में लिखें। और फिर दाईं तरफ उन सबकों की लिस्ट बनाएं जो आपने उन गलतियों से सीखी है और जिसे सीखने के बाद आपको भविष्य में इस बात का लाभ भी मिला है। आप शीघ्र ही महसूस करेंगे कि अतीत की उन गलतियों के बिना आपका जीवन बेरंग और उदास है। इसलिये खुद के प्रति उदार बनें और जीवन को इसके वास्तविक स्वरूप में देखने की कोशिश करें जिसके अंतर्गत आत्मविश्लेषण, व्यक्तिगत विकास और जीवनभर का सबक आता है।

सोनालि राउत, +3 तृतीय वर्ष

गाड़ीवान किसान की हनुमान भक्ति

बहुत पुरानी बात है, एक गाड़ीवान था। वह रोज अपनी गाड़ी में माल भरकर शहर ले जाता था। वहां जाकर वह माल बेचता था, उससे उसे जो भी आय होती थी, उसी से उसके परिवार का खर्चा चलता था। वह हनुमान जी का बहुत बड़ा भक्त था। वह रोज सुबह मंदिर जाता था और हनुमान जी की पूजा करता था।

एक बार वह शहर से माल बेचकर वापस लौट रहा था। बारिश के मौसम में जगह जगह रास्ते में दलदल हुआ करते थे। बहुत संभालकर गाड़ी चलाने के बाद भी रास्ते में उसकी गाड़ी के पहिये दलदल में फँस गये। बैलों ने बहुत जोर लगाया लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। गाड़ीवान ने जब देखा कि बैल गाड़ी को बाहर नहीं खींच पा रहे हैं, तो यह देखकर वह परेशान हो गया। यूँकि वह खुद कीचड़ में नहीं उतरना चाहता था इसलिए उसने गाड़ी में बैठे - बैठे ही हनुमान जी को पुकारना शुरू कर दिया। वह हनुमान जी का भक्त था इसलिए हनुमान जी से इस मुसीबत से उबरने के लिए गुहार लगाने लगा। उसे काफी देर हो गई थी हनुमान जी को पुकारते पुकारते, लेकिन कोई मदद नहीं मिली। इस पर उसे गुस्सा आ गया, और वह कहने लगा - इतनी देर से मदद की गुहार लगा रहा हूँ फिर भी हनुमान जी की कृपा मुझ पर नहीं बरसी हैं। वहीं पास में एक खेत था उसमें एक किसान हल चला रहा था। वह बहुत देर से यह तमाशा देखा रहा था। वह उस व्यक्ति के पास आया और बोला - तुम हनुमान जी के भक्त हो ना फिर तुम उन्हें क्यों दोष दे रहे हो। तुम खुद कीचड़ में उतरकर जोर क्यों नहीं लगाते? अगर तुम वाकई में हनुमान जी के भक्त हो तो उनके जैसा बनने का प्रयास करो। वह तो समुद्र पार कर गये थे और तुम कीचड़ में भी नहीं उतर सकते हो। जो काम तुम खुद कर सकते हो उसके लिए हनुमान जी को क्यों पुकार रहे हो। इस तरह बैठे बैठे तुम्हारी गाड़ी कीचड़ से पार नहीं हो सकती है। इतना सब सुनने के बाद गाड़ीवान को अपनी गलती का एहसास हुआ। वह कीचड़ में उतरा और पहियों पर जोर लगाना शुरू कर दिया। धीरे धीरे गाड़ी कीचड़ से पार हो गयी।

इस कहानी से शिक्षा मिलती है कि हमें अपना हर काम अपने पुरुषार्थ से करने की कोशिश करनी चाहिए। हर काम के लिए ईश्वर के भरोसे बैठना कतई भी ठीक नहीं है। हम ईश्वर से भीखारियों की तरह भीख मांगते रहते है कि मेरा ये काम करवा दो तो मेरा वो काम करवा दो। जबकि ईश्वर भी सिर्फ उन्हीं लोगों की मदद करता है जो स्वयं अपनी मदद करना जानते हैं।

शरीफा शरवारी, +3 प्रथम वर्ष

मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना

धर्म को सामान्यतः अंग्रेजी शब्द 'Religion' के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है, जिसे मज़हब, मत, पंथ आदि के संदर्भ में स्वीकार किया जाता है। धर्म की व्यख्या करते हुए 'मनुस्मृति' में कहा गया है - धैर्य, क्षमा, दान, आत्मज्ञान, सत्य और अक्रोध धर्म के दस लक्षण होते हैं। वस्तुतः जीवन में हमें जो धारण करना चाहिए, वही धर्म है। नैतिक मूल्यों का आचरण ही धर्म है। धर्म वह पवित्र अनुष्ठान है, जीससे चेतना का शुद्धीकरण होता है। यह वह तत्व है, जिससे मनुष्य अपने मानवीय गुणों का विकास करता है।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने धर्म के बारे में स्पष्ट करते हुए लिखा है - "जिन सिद्धातों के अनुसार हम अपना दैनिक जीवन व्यतीत करते हैं तथा जिनके द्वारा हमारे सामाजिक संबंधों की स्थापना होती है, वे सब धर्म ही हैं। धर्म जीवन का सत्य और हमारी प्रकृति को निर्धारित करने वाली शक्ति है।"

अपने वास्तविक अर्थ में भी 'धर्म' शब्द 'ब्रम्हा' का पर्याय है। 'धारयते इति धर्मः' अर्थात जिसने समग्र ब्रम्हाण्ड को धारण कर रखा है अथवा धारण करते हुए जो सर्वत्र व्याप्त है, वह धर्म है। धर्म का संबंध मानव मात्र की भलाई या परोपकार से है, लेकिन मानव - समाज के कुछ स्वार्थी लोगों ने धर्म के दायरे को संकीर्ण बनाकर अपने हितों को साधना शुरू कर दिया है।

भारतीय समाज विविधताओं में एकता वाला समाज है। यहाँ लगभग सभी क्षेत्रों में असंख्य विविधताओं देखने को मिलती हैं।

कबीर ने अपने कई दोहे में धर्म के बारे में कहा हैं -

"माला फेरत जुग भया, गया न मन का फेर।

कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर।।"

कबीर ने अपनी दोहे में न पाखंडी पंडितों को छोड़ा, न अन्धविश्वासी मौलवियों को। वे कर्मकांड के सख्त विरोधी थे। दिखावा करने वाले नमाज़ियों का विरोध किया, दूसरी ओर माला फेरने वाले पाखण्डी पंडितों को भी खरी - खोटी सुनाई। दोनों का विरोध जम के किया हैं। कबीर न केवल महान कवि थे बल्कि गम्भीर चिंतक, ईश्वर के सच्चे भक्त, क्रांतिकारी, समाज सुधारक भी थे। कबीर की ही नहीं, बल्कि पूरे भक्ति - काव्य की एक ही चेतना थी, मानवता के धर्म की प्रतिष्ठा। भारतीय संविधान में स्पष्ट कहा गया है कि धर्म, जाति या लिंग किसी भी आधार पर किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि हमारी राजनीति गतिविधियों में सांप्रदायिकता, जातीय, क्षेत्रीयता जैसि भावनाएँ गहराई तक प्रवेश कर चुकी हैं। जिस प्रकार धर्म सुख का मूल है, उसी प्रकार सुहानुभूति धर्म का मूल है, इसलिए जब राजनीति को धर्म से दूर रखा जाता है, तब सुहानुभूति की भावना समाप्त हो जाती है।

जिन धार्मिक गुरुओं ने धर्म के माध्यम से लोगों को मानव - मात्र से प्रेम, बंधुत्व और एकता की भावना रखने का पाठ पढ़ाया, आज उन्हीं की आड़ लेकर धर्मभीरु जनसामान्य की भावनाओं से खेला जा रहा है। बाबरी मस्जिद एवं राम जन्मभूमि विवाद राजनीतिज्ञों की स्वार्थपरक नीति का ही परिणाम है।

गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है- " जिमि पाखण्ड विवादते, लफपत होय सद्ग्रन्थ" अर्थात पाखण्ड के फैल जाने पर सच्चे धर्म का लोप हो जाता है। आज देश के प्रत्येक नागरिक को धर्म के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए। ऐसे ज्ञान से ही धार्मिक कलह समाप्त हो पाएगा। लोग स्वार्थी बहकावे में नही आएंगे। मानव का मान - सम्मान बढेगा। लोगों में प्रेम एवं बंधुत्व की भावना का विकास होगा।

“मज़हब नहीं सिखाता आपस मे बैर रखना, हिंदी है हम, वतन है हिंदोस्तां हमारा” - में एक ओर एकता का संदेश है, तो दूसरी ओर मानवीयता का, एक और राष्ट्रीयता है, तो दूसरी ओर अंतराष्ट्रीयता का।

स्तुति प्रज्ञा दास, +3 प्रथम वर्ष

आपकी बात

"मुझे अत्यंत खुशी होती है कि हिंदी विभाग की छात्राएं **'हिंदी भारती'** के निरंतर प्रकाशन में बहुमूल्य योगदान दे रहीं हैं। **'हिंदी भारती'** छात्राओं की सृजनात्मक प्रतिभा को अंकुरित होने हेतु उपयुक्त भूमि प्रदान करती है।

भविष्य में महाविद्यालय में कविता एवं कहानी लेखन प्रतियोगिता का आयोजन कर, अन्य भाषाओं की कविताओं एवं कहानियों का हिन्दी विभाग की छात्रायें हिंदी में अनुवाद कर यदि उनको पत्रिका में प्रकाशित किया जाए तो निःसंदेह पत्रिका का स्तर और बढ़ जाएगा।

'हिंदी भारती' के सफल प्रकाशन हेतु विभाग की छात्राओं और संपादक मंडली को शुभकामनाएं।"

श्री. प्रदीप्त कुमार मिश्र
प्रिंसिपल
कमला नेहरू महिला महाविद्यालय
भुबनेश्वर

प्यारे बच्चों, आप सब के लिए में अपनी असीम, अनंत मंगलकामनाएं प्रेषित कर रहा हूँ। आप विधिवत शिक्षित हों, निरंतर प्रगति करें। स्वस्थ, दीर्घायु और यशस्वी हों। आप साहित्य - संवेदना को पूरी सहृदयता से आत्मसात करो। बच्चों, मत भूलो की भाषा, देश की और व्यक्ति की पहचान है। किसी भी प्रतिभाशाली की कसौटी भाषा भी है। अतः शुद्ध बोलना, शुद्ध लिखना, शुद्ध पढ़ना और शुद्ध सुनना सफलता के लिए सर्वोत्तम सूत्र है। हम सभी शिक्षक आपको उन्नयन उन्मुख देख कर गौरवान्वित होंगे। आपकी उच्च स्तरीय हिंदी पत्रिका **'हिंदी भारती'** आप के लिए वरदान है। पठनीयता को नियमित बनाइये। पुनः आपके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ, तथा प्रभु से अनुरोध करता हूँ कि वे आप सभी पर अपना आशीष बरसते रहें।

प्रोफेसर पूरन चंद टंडन,
हिंदी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली।

"कमला नेहरू महाविद्यालय के हिन्दी विभाग की ई-पत्रिका 'हिन्दी भारती' के दो अंक प्राप्त हुए। इनमें एक ही स्थान पर कविता, कहानी, अनुवाद आदि का अद्भुत स्वाद मिल जाता है। छात्राओं में साहित्यिक रूचि जगाने की दिशा में इसे एक प्रशंसनीय प्रयास माना जाना चाहिए। यह सदैव पल्लवित और पुष्पित होती रहे- इस शुभकामना के साथ---"

डॉ. मंजु मोदी
सहायक प्रोफेस
शैलबाला महिला स्वयंशासित महाविद्यालय
कटक।

"बहुत सफल प्रयास के लिए साधुवाद। हिंदी को विद्यार्थियों के मध्य परिचित, प्रसारित करने और उनमें रचनाधर्मिता जागृत करने के पुनीत प्रयास हेतु भी बधाई। रचनाओं का चयन प्रशंसनीय है तथा सभी रचनाएँ भाव, भाषा एवं रचना शिल्प से आकर्षित करती हैं।

इस पत्रिका में हिंदी और ओड़िया साहित्य के संबंधों के संदर्भ में शोध हेतु विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने के प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। स्थानीय एवं क्षेत्रीय साहित्यकारों के योगदान को भी विद्यार्थी तलाशने की चेष्टा करें। यह सामयिक और प्रासंगिक होगा।

विभाग की सभी विद्यार्थियों और संपादक मंडल को भविष्य के प्रयासों हेतु शुभकामनाएं।"

प्रोफेसर एस. के. चतुर्वेदी
भू. पू. विभागाध्यक्ष
राजनीति शास्त्र विभाग
भू. पू. प्रो वाईस चांसलर
मेरठ विश्वविद्यालय

"कमला नेहरु महिला महाविद्यालय की ई पत्रिका **"हिंदी भारती"** भारतवर्ष के ऐसे क्षेत्र से प्रकाशित हो रही है जिसे भगवान जगन्नाथ की पावन तीर्थ भूमि होने का गौरव प्राप्त है और जहां हर भारतवासी जीवन में एक बार अवश्य आना चाहता है। 'हिंदी भारत को जोड़ने की भाषा है' - यह वाक्य ई पत्रिका **"हिंदी भारती"** के सम्पादक द्वय एवं पूरे दल ने सिद्ध किया है। अहिंदीभाषी छात्राओं की रचनाओं का प्रकाशन एक सफल भगीरथ प्रयास है, और निश्चित ही देश, भाषा एवं सृजनशीलता के लिये शुभ लक्षण है। यह एक छोटा सा दीपक गहन अंधकार का शोर मचाने वालों के लिये प्रेरणा एवं अंधकार को चुनौती देता है। विषयों का चुनाव, उन पर रचनायें करना और फिर इतने कम समय में उन्हें प्रकाशित करना, इस पूरी टीम के कठिन परिश्रम, उदात्त भाव एवं भाषा निष्ठा का जीवंत प्रमाण है। जिसकी जितनी प्रशंसा की जाये कम है। इस प्रयास से जुड़े सभी को शुभकामनायें।"

डॉ. राजीव कुमार रावत
हिंदी अधिकारी
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान
खड़गपुर

"ओड़िशा जैसे हिंदीतर - भाषी प्रांत के एक महाविद्यालय के विद्यार्थियों के द्वारा इतनी सुरम्य एवं भावोत्तेजक रचनाओं से परिपूर्ण और अंतर्राष्ट्रीय युनिकोड मानक में संसाधित ई-पत्रिका का प्रकाशन भारत-भर में अद्वितीय है। इसका श्रेय संपादिका एवं हिंदी प्राध्यापक श्रीमती वी. रमालक्ष्मी जी की तपस्या - सम कठिन साधना को जाता है। पत्रिका के रचनाकारों की निरंतर साहित्यिक प्रगति के लिए शुभकानाएँ।"

हरिराम पंसारी

वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा), नालको, भुवनेश्वर

सदस्य, पी.आर.एस.जी., इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार,

सचिव, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति(उपक्रम),भुवनेश्वर एवं

सदस्य, युनिकोड कॉन्सार्टियम, यू.एस.ए.

"कमला नेहरु महिला महाविद्यालय की ई **पत्रिका "हिंदी भारती"** ओड़िशा में के विकास तथा छात्राओं में नयी जागृति पैदा करने के लिये एक श्रेष्ठ कदम है। हम आशा करते हैं कि सब अपने अपने क्षेत्र में इस भाँति प्रयोग करें, जो हिंदी जगत में नई चुनौती होगी । कमला नेहरु महिला महाविद्यालय के हिंदी विभाग को मेरी हार्दिक शुभकामनायें।"

डॉ. उस्मान खान

हिंदी विभागाध्यक्ष

भद्रक महिला महाविद्यालय

भू. पू. हिंदी विभागाध्यक्ष

कमला नेहरु महिला महाविद्यालय

“कमला नेहरू महिला महाविद्यालय, भुवनेश्वर के हिंदी विभाग की ओर से प्रकाशित ई-पत्रिका 'हिंदी भारती' न केवल महाविद्यालय की छात्राओं के लिए बल्कि अन्य साहित्यप्रेमियों के लिए भी एक बेहतर साहित्यिक आस्वाद का माध्यम बन रही है।मेरे जाने यह हिंदी की अकेली ऐसी ई-पत्रिका है जिसमे अधिकांश लेख महाविद्यालय की छात्राओं के ही होते हैं।हिंदी साहित्य के लिए यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।इससे न केवल संस्थान में पढ़ने वाली छात्राओं की लेखन में रुचि विकसित होती है बल्कि उनका अपने लेखन के प्रति आत्मविश्वास भी जागता है।यह आत्मविश्वास अत्यंत मूल्यवान है,क्योंकि किसी भी शैक्षिक संस्थान का उद्देश्य अंततः संस्थान में पढ़ने वाली छात्राओं का रुचि-विकास और उनकी आंतरिक प्रतिभा को सबके सामने लाना ही होता है।

इस पत्रिका के माध्यम से कमला नेहरू महिला महाविद्यालय,भुवनेश्वर न केवल अपने दीर्घकालीन उद्देश्यों को पूरा करने में सफल हो सकेगा बल्कि संस्थान से पढ़कर निकलने वाली छात्राएं एक सुरुचि सम्पन्न और संस्कारवान नागरिक बनकर देश के विकास में अपना योगदान दे सकेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

इस महत प्रयास के लिए महाविद्यालय की हिंदी विभाग की विभागाध्यक्षा डॉ वेदुला रामालक्ष्मी को हार्दिक बधाई और शुभकामनाएं।“

बालेन्दु द्विवेदी

लेखक:'मदारीपुर जंक्शन'

बूढ़ी काकी

प्रेमचंद

https://youtu.be/H4D_eIQZGoE

यादों के गलियारों से

धूप का मुकाबला करने को तैयार

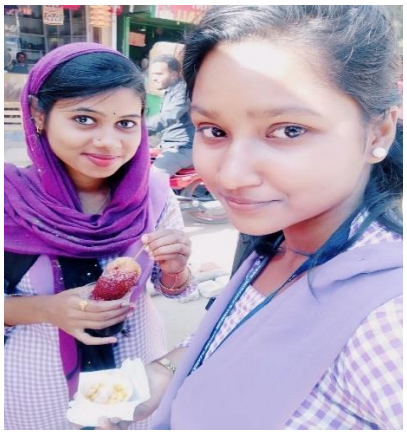

गर्मी की लम्बी छुट्टियों से पहले

धन्यवाद